"साहित्य में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना का भाव"

डॉ.पुरुषोत्तम पाटील
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
कवयित्रि बहिणाबाई चौधरी उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय
जलगाँव – 425001 (महाराष्ट्र)

'सारांश'

"भारतीयों के लिए राष्ट्र या देश कोई भूमि का टुकड़ा नहीं जिसका उपयोग वे अपने अधिवास मात्र के लिए करते हों अपितु राष्ट्र और उसकी चेतना का स्पंदन भारतीय जनमानस के रक्त में संचरण करता है। इस बात को हर युग में, हम भारतवासियों द्वारा अनुभव किया जाता है। राष्ट्र और उसका गौरवभान सदियों से भारत जन के हृदयों में था है और रहेगा। जब भी राष्ट्र पर कोई विपदा आती है तो यह भाव तीव्रता से उभरकर सामने आता है। भारतीय साहित्य ने इस राष्ट्र भाव को न केवल सँजोया है अपितु उसकी अभिवृद्धि में भी साहित्य का असाधारण योगदान है। संस्कृति-समाज-साहित्य तीनों अन्योनाश्रित हैं जो भारतीय जनजीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। हर भारतीय इन तत्वों से अनुप्राणित होता है। साहित्य का यह अनन्यसाधारण अवदान भारतवर्ष की अमूल्य निधि है।"

सामान्य अर्थ में देखें तो साहित्य का अर्थ होता है , 'हितकर ' अथवा 'कल्याणकारी' , सच्चा साहित्य वही है जिसकी कुछ उपादेयता हो, अन्यथा वह केवल शब्दों का पुलिंदा मात्र रह जाता है। शब्द भी ऐसे हों जो अर्थ के साथ पूर्ण रूप से संपृक्त हों। तुलसीदासजी इसे जल; और वीचिं (तरंग) के रूप में देखते हैं -

©Indira Gandhi National Open University

"गिरा अरथ जल वीचिं सम, कहियत भिन्न न भिन्न।"[1]

प्रेमचंद ने कहा है *"साहित्य जीवन की आलोचना है।"*[2] साहित्य वही श्रेष्ठ है जो स्वांतः सुखाय ना हो अपितु समाज हितैषी हो और समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर सके, उसे कुछ दे सके। इस दृष्टि से साहित्य समाज को बहुत कुछ देता है यथा -

(१) समाज का स्वस्थ मनोरंजन कर उसे आनंद प्रदान करना।

(२) समाज में संवेदनशीलता उत्पन्न करना।

(३) समाज को नए विचार एवं नई भूमिका प्रदान करना।

(४) समाज को नई दिशा देना।

(५) अपने देश और उसकी संस्कृति के प्रति आस्था का भाव प्रबल करना।

उपरोक्त बातों पर विचार किया जाए तो यह कहा जा सकता है कि साहित्य का प्राथमिक उद्देश्य समाज को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना है जिससे समाजजन अपने आप को शारीरिक तथा मानसिक रूप से आनंदित एवं प्रसन्नचित्त अनुभव करें, समाजजन के दैनिक दुखों का भार हलका हो, साथ ही साहित्य समाज को संवेदनशील बनाने का कार्य करे ताकि समाज हर अच्छी एवं बुरी बात का उचित आंकलन कर उस बात की सराहना अथवा भर्त्सना करने में वह सक्षम बने। चूँकि साहित्य गहन चिंतन का परिणाम होता है अतः उसमें स्वाभाविक रूप से एक नया विचार होता है और जब यह नया विचार समाज को मिलता है तो वह एक नई भूमिका अपनाता है। समग्र रूप में देखें तो साहित्य समाज को एक नई दिशा देकर उसे विकास के पथ की ओर ले जाने हेतु तैयार करता है।

©Indira Gandhi National Open University

इन सब के अलावा साहित्य की जो एक महत्वपूर्ण सामाजिक देन है, वह है 'समाज में राष्ट्रीय चेतना की अभिवृद्धि'। दुर्भाग्यवश भारत सदियों तक विदेशी आक्रांताओं के आक्रमणों का शिकार होता रहा, हर किसी आक्रमणकारी ने यहाँ आकर भारतीय समाज को तोड़ने और उसके अस्तित्व को नष्ट करने का प्रयास किया, किंतु भारतवर्ष पर जब -जब भी बाहरी आक्रमण हुए, तब-तब भारतीय जन -समुदाय ने एकजुट होकर इन आपदाओं का सामना किया। इसी के फलस्वरूप जहाँ एक ओर विश्व की कई पुरातन सभ्यताएँ काल के गाल में समा गईं वहीं दूसरी ओर भारतीय सभ्यता और संस्कृति आज भी अपने मूल रूप में विश्व पटल पर अपना उन्नत माथा लिए गर्व से खड़ी है।

उन सारी विपरीत स्थितियों में, हर कालखण्ड में साहित्य ने समाज का उत्साह बढ़ाकर, उसे अपनी जड़ों के प्रति संवेदनशील बनाए रखा, उसे नया विचार दिया और एक नई दिशा देने का महान कार्य किया है, यह निर्विवाद है।

राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की चेतना वह भावना है जो समस्त समाज को एकता के धागे में पिरोती है। जहाँ राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता का नाम आता है वहाँ समाज का प्रत्येक जन एक गर्व की अनुभूति कर स्वयं में एक नव उत्साह एवं नव ऊर्जा का संचार हुआ पाता है। भारतीय साहित्य की यह बहुद बड़ी देन है कि उसने हर युग में, हर काल में राष्ट्रीय चेतना को ना केवल जगाए रखा अपितु उसकी अभिवृद्धि की है फिर चाहे वह वैदिक काल हो, आदिकाल हो, भक्तिकाल हो, रीतिकाल अथवा आधुनिक काल। इन समस्त कालखंडों में साहित्य किस प्रकार से राष्ट्रीय चेतना के झरने को अबाधित रूप से प्रवाहित कर रहा था इसे देखना-समझना समीचीन होगा।

❖ वैदिक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना :

©Indira Gandhi National Open University

वैदिक साहित्य भारतवर्ष की राष्ट्रीय भावना का मूल है। समस्त वेदों एवं उपनिषदों में राष्ट्र एवं उसके अनन्य साधारण महत्व का गुणगान बिखरा पड़ा है जिससे उस कालखण्ड में राष्ट्रीय चेतना बलवती हुई दृष्टिगोचर होती है।

यजुर्वेद में कई स्थानों पर राष्ट्रीय चेतना के स्वर गुंजायमान होते हैं यथा –

'राष्ट्रं मे देहि ' अर्थात मुझे राष्ट्र प्रदान करें[3]

यहाँ यज्ञरत राजा यह कहते हुए कामना व्यक्त करता है कि उसे एक जन समूह, मानव समुदाय का नेतृत्व मिले। इसी तरह

'आ राष्ट्रे राजन्य:शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम' अर्थात हमारे राष्ट्र में क्षत्रिय, वीर, धनुषधारी, लक्ष्यवेधी और महारथी हों। इसी तरह अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्तों में *'त्वा राष्ट्र भृत्याय'* तथा *'माता भूमि:पुत्रो sहं पृथिव्या:'* जैसे वचनों का उल्लेख मिलता है जहाँ स्वयं को राष्ट्र का भृत्य (सेवक) तथा भूमि को अपनी माता और स्वयं को उसका पुत्र संबोधित किया गया है। इसी प्रकार राष्ट्र की समृद्धि हेतु *'अभिवर्धताम पयसामि राष्ट्रेण वर्धताम '* जैसी कामनाएँ देखने को मिलती हैं।

अथर्ववेद ही में एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि -

'यस्या पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरान अभ्यवर्तयन'[4] अर्थात इस राष्ट्र को पूर्वजों ने समृद्ध बनाया है, हमारी इस पृथ्वी तथा राष्ट्र के लिए हमारे पूर्वजों ने अनेक पराक्रम किए हैं, इस पृथ्वी से देवों ने असुरों को पराजित किया है।' यजुर्वेद में एक अन्य स्थान पर गद्यात्मक मंत्र में छोटे -छोटे वाक्यों द्वारा राष्ट्रहित की कामना की गई है, यथा -

"आं ब्रह्मणब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां।"

©Indira Gandhi National Open University

गरुड पुराण में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की अभिलाषा कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है-

स्वाधीन वृत्तः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता।

ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि ते मृताः॥"

इसी तरह 'अथर्ववेदीय पृथिविसूक्त (१२/१/१-६३) में मातृभूमि के प्रति भारतीय भावना का सुंदर वर्णन पाया जाता है। मातृभूमि के स्वरूप और उसके साथ राष्ट्रीय जन की एकता का जैसा वर्णन इस सूक्त में है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।[5]

समग्रत: वैदिक साहित्य मनुष्य, परिवार, समूह, प्रान्त से राष्ट्र तक पहुँचकर एक सामुदायिक चेतना को बलवती करता है जिसे राष्ट्र कहा गया। यह बात इस ओर इंगित करती है कि राष्ट्र एवं राष्ट्रीय चेतना के बीज वैदिक काल से ही हमारे साहित्य में मौजूद हैं जो आगे चलकर भविष्य के साहित्य में अंकुरित और पल्लवित हुए और इस काल के साहित्य ने समाज में राष्ट्रीय चेतना को प्रसृत किया जो उसकी अमूल्य देन है।

❖ आदिकाल के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

ग्यारहवीं शती से लेकर चौदहवीं शती तक का काल भारतवर्ष के लिए बड़ा संघर्षपूर्ण रहा। ग्यारहवीं शती के पूर्वार्ध में महमूद ग़ज़नवी द्वारा पश्चिमी और मध्य देशों पर आक्रमण किए गए तो बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में शहाबुद्दीन गौरी नें दिल्ली पर कई बार आक्रमण किए, सात बार हारने के बाद आठवीं बार जाकर कहीं वह धोखे से महाराज पृथ्वीराज चौहान को हरा पाया और गौरी का दास कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का राजा बना और यहाँ से भारतवर्ष में विदेशी शासन की शुरुवात हुई। इन सत्ताधीशों द्वारा तत्कालीन साहित्य एवं संस्कृति के केंद्रों को क्षति पहुँचाई गई।

©Indira Gandhi National Open University

इस कठिन काल में भी साहित्यकारों ने राष्ट्र चेतना की अलख जगाए रखी जिसके चलते *"समाज को सजग और समर्थ बनाने की चेतना उस काल के काव्य में मिलती है।"*[6] उसी के दर्शन हमें यहाँ होते हैं, जैसे - शालिभद्र सूरि (द्वितीय) कृत 'पंच पंडव चरितदासु' में सांप्रदायिक समन्वय की प्रवृत्ति *तथा "आपत्ति में धैर्य की क्षमता उत्पन्न करना और शील रक्षा यज्ञ में सर्वस्व होम देने की भावना को बलवती बनाना 'चंदनबाला रास ' का मुख्य उद्देश्य है।"*[7]

इसी तरह चंद कवि का 'पृथ्वीरास रासो' ग़ौरी और महाराज पृथ्वीराज चौहान के युद्ध के दौरान सम्राट चौहान के मन में प्रबल राष्ट्रीय चेतना का संचार करता है। अन्य रासो काव्यों में बीसलदेव रासो, खुमान रासो, आल्हा आदि ने अपने राजाओं के शौर्य पराक्रम का वर्णन कर ना केवल उनमें अपितु समस्त जनमानस में राष्ट्रीय चेतना का प्रस्फुरण किया।

❖ भक्तिकाल के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

इस कालखण्ड तक विदेशी आक्रांता भारत में स्थापित हो चुके थे और भारतीय जनता पर भाँति- भाँति अत्याचार कर रहे थे जिससे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानों भारतीय संस्कृति नष्ट होने के मार्ग पर है, इससे *'जन समुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही।"*[8]इस अवस्था में भक्तिकालीन संत साहित्यकारों ने जनता के मन में नया उत्साह जगाकर एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय चेतना का संचार किया। इसका आरंभ दक्षिण में श्री रामानुज ने किया और आगे वह श्री रामानंद तथा श्री वल्लभाचार्य के नेतृत्व में उत्तर भारत तक प्रसारित हुआ।

भविष्य पुराण के अनुसार- *'म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चसन रामानन्दप्रभावतः' अर्थात् स्वामी रामानंद ने अयोध्या में बलपूर्वक म्लेच्छ बना दिए गए लोगों को पुनः वैष्णव बनाया।"*[9] श्री रामानंद ने 'राम तारक मंत्र ' तथा 'रामरक्षा' आदि की

©Indira Gandhi National Open University

रचना कर जनता को नया आत्मिक बल प्रदान करने का कार्य किया। इस काल में तुलसीदासजी ने इस पराधीनता भरे वातावरण में 'पराधीन सुख सपनेहुँ नाहीं' कहकर जनता को झकझोर दिया। रामचरित मानस 'पाप और पतन के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध और संघर्ष की प्रबल प्रेरणा से अनुप्राणित है' जो जन-जन में तत्कालीन राष्ट्र विरोधी शक्तियों के विरुद्ध एक नव राष्ट्रचेतना को भर देता है।

इस कालखण्ड में उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम सभी क्षेत्रों के संतों नें अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्र चेतना की देन जनता को दी है। इनमें उत्तर में स्वामी रामानंद, गुरु नानकजी, दक्षिण में आदि गुरु शंकराचार्य, स्वामी रामानुजाचार्य, आलवार भक्त, नायनमार भक्त, पूर्व में श्रीमंत शंकरदेव, श्री चैतन्य महाप्रभु, श्री कृत्तिवास ओझा और पश्चिम में नरसी मेहता, संत ज्ञानेश्वर , संत नामदेव आदि प्रमुख हैं।

❖ रीतिकाल के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

वैसे तो लगभग समस्त रीतिकालीन साहित्य कामुक श्रृंगार की लिप्सा तथा चाटुकारिता से प्रेरित चारणों की राजनिष्ठा से ओतप्रोत है किंतु उस काल में भी एक व्यक्ति ऐसा था जिसने साहित्य के इस धूल-धूसरित अंधड़ में राष्ट्रीय चेतना के दिये की लौ को बुझने से बचा रखा था। औरंगज़ेब की क्रूरता और तत्कालीन कट्टर इस्लामी आक्रामकता के विरुद्ध वह अकेला राष्ट्रधर्म पताका को काँधे पर धारण किए देशभर में भ्रमण कर राष्ट्र वीरों का गुणगान कर जनमानस को राष्ट्रीय भाव से आंदोलित कर रहा था, वह था कवि 'भूषण'।

वे महाराजा छत्रसाल के दरबारी कवि थे। उन्होंने महाराजा छत्रसाल के वीरतापूर्ण युद्धों का प्रखर वर्णन कर जनमानस में विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध चेतना जागृत की, जो उनके ग्रंथ 'छत्रसाल दशक' में वर्णित है। उन्होंने अपने ग्रंथों 'शिवराज भूषण' तथा 'शिवा बावनी' में छत्रपति शिवाजी महाराज की वीरता का बड़ा ओजस्वी वर्णन किया है।

©Indira Gandhi National Open University

जब वे महाराज शिवाजी के बारे में कहते हैं कि -

'राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यौ,

अस्मृति पुरान राखे, वेद धुन सुनी मैं।'

तब सभी का माथा गर्व से उठ जाता है तथा एक नया उत्साह भर व्यक्ति राष्ट्र के प्रति चेत उठता है। और जब वे कहते हैं -

'तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,

त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज पर।'

तथा

'मीडि राखे मुगल, मरोड़ी राखे पातसाह,

बैरी पीसि राखे बरदान राख्यौ कर में।

राजन की हद्द राखी, तेग-बल सिवराज,

देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यौ घर में।'

तब यह अनुभव कर के राष्ट्र चेतना के स्वर अपने आप फूट पड़ते हैं। और जब वे कहते हैं कि -

'दच्छिन से उत्तर लौं जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को।'

जब वे यह इंगित करते हैं कि दक्षिण से लेकर उत्तर तक जहाँ-जहाँ भी विदेशियों नें अपनी तथाकथित बादशाहत जमा रखी है, उसके असली दावेदार इस राष्ट्र के सामान्य जन के प्रतिनिधि के रूप में जननायक छत्रपति शिवाजी महाराज ही हैं।

©Indira Gandhi National Open University

❖ नवजागरण काल के भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

इस कालखण्ड का आरंभ सन् 1857 की क्रांति के आसपास से होकर देश की स्वतंत्रता तक फैला है। इस समय राष्ट्र का दो तिहाई हिस्सा विदेशी शासन के पास था तो शेष हिस्सा राजाओं और नवाबों के अधिकार में था। जनता पीड़ित थी, शोषण के चक्र में पिस रही थी, यही कारण है कि इस कालखण्ड में रचित *'साहित्य की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जागरण की प्रवृत्ति का स्वर सबसे अधिक मुखरित हुआ ..... यही वह युग है जिसमें राष्ट्रीय जागरण की चेतना अपने पूर्ण उत्कर्ष पर थी।'*[10] यह वही युग था जिसमें पूर्व में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, अरविन्द घोष, पश्चिम में कवी नर्मद, कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी, रमणलाल देसाई, उत्तर में भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त तथा दक्षिण में सुब्रमण्य भारती और कुवेंदु आदि जैसे महापुरुषों नें अपनी लेखनी से राष्ट्रीय चेतना की नवक्रांति का सूत्रपात किया।

पूर्व में जब बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय 'वंदे मातरम्' और गुरुदेव 'जनगण मन' कह कर राष्ट्र चेतना का स्वर बहा रहे थे, तो पश्चिम में श्री नर्मद अपने 'हिन्दुओ नी पड़ती' (हिन्दुओं का पता) नामक निबंध में लोगो को झकझोरते हुए कह रहे थे कि आजकल लोग स्वयं के सुख का ही विचार करते हैं, ' जिस समाज के लोगों की विचारधारा इतनी संकुचित और इतनी स्वार्थपरक है वे लोग एक होकर देश पर मर मिटने की बात तो सोच ही नहीं सकते क्योंकि एकता और देशभक्ति के लिए दूसरे के सुख का विचार करना पड़ता है।' उधर उत्तर में भारतेंदु से भारत की यह दुर्दशा देखी नहीं जा रही थी अत: वे प्राचीन भारत का गौरव जगाते हुए कहते हैं - ' यही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास, जिनके भारत गान सों भारत बदन प्रकास।' और जयशंकर प्रसाद कह रहे थे -' हिमाद्रि-तुंग-श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।' दक्षिण में

©Indira Gandhi National Open University

तमिल महाकवि सुब्रमण्य भारती 'स्वदेश मित्रम', 'चक्रवर्तिनी ', 'सूर्योदयम' आदि रचनाओं से समस्त दक्षिण देश को राष्ट्र चेतना से भर अपनी 'वन्देमातरम्' कविता में कह रहे थे -' विदेशी हमलावरों के प्रति करते हैं हम क्रांतियाँ' तथा - 'विघ्नों के दल चढ़ आए तो उन्हें देख भयभीत न होंगे, आर्यभूमि उत्कर्षमयी यह, गूँजेगा यह गान हमारा, महिमामय यह देश हमारा।' और कन्नड़ महाकवि कुवेंदु अपनी पाञ्चजन्य, तपोनंदन अदि रचनाओं के माध्यम से राष्ट्र जागरण कर रहे थे।

उपसंहार

समग्र रूप से देखा जाए तो हम पाते हैं कि 'राष्ट्रीय चेतना की अभिवृद्धि' साहित्य की अनुपम देन रही है जो भारत के वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। यह भाव भारतवर्ष के उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम आदि सभी प्रदेशों के साहित्य में परिलक्षित होता है। हर समय हर काल में साहित्य से राष्ट्र चेतना का स्वर निरंतर फूटटा रहा है और भारतीय जनमानस में एक नव उत्साह भर राष्ट्रीय चेतना की अभिवृद्धि करता है और इसी कारण हमारा अस्तित्व आज भी है और सदियों तक रहेगा भी इसमें कोई संदेह हो ही नहीं सकता।

संदर्भ

(1) रामचरित मानस - तुलसीदास - गीताप्रेस गोरखपुर –1/18

(2) साहित्य का उद्देश्य निबंध – प्रेमचंद

(3) यजुर्वेद (भारत विद्या) - डॉ. रेखा व्यास -विश्व बुक प्रा. लि.- 2013 - पृ. - 116

©Indira Gandhi National Open University

(4) अथर्ववेद / काण्ड 12 / सूक्त -01-05

(5) भारतीय संस्कृति की रूपरेखा-बाबू गुलाबराय-साहित्य प्रकाशन मंदिर-ग्वालियर-1952-पृष्ठ-45

(6) अथर्ववेद / काण्ड 12 / सूक्त -01-05

(7) हिंदी साहित्य का इतिहास-डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा/डॉ.रामनिवास गुप्त –मंथन पब्लिकेशन, रोहतक-पृ.-41

(8) हिंदी साहित्य का इतिहास-डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा/डॉ.रामनिवास गुप्त –मंथन पब्लिकेशन, रोहतक-पृ.-41

(9) भविष्य पुराण - तृतीय पर्व/चतुर्थ खण्ड/अध्याय -21.

(10) हिंदी साहित्य का इतिहास-डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा /डॉ.रामनिवास गुप्त –मंथन पब्लिकेशन, रोहतक-

पृ.-352/353

©Indira Gandhi National Open University